ठाकुर का आसन - विजय दान देथा

गढ़ के बड़े चबूतरे पर संगमरमर के नक्काशीदार मयूरासन पर ठाकुर बैठा था। चबूतरे पर कश्मीरी गलीचा बिछा था।

पास ही फर्श पर चौधरी बैठा था। ठाकुर बिना बात ही भगवान जाने आज क्यों बहुत खुश था। मूँछों पर ताव देते हुए चौधरी ने मसखरी के सुर में कहा, 'चौधरी , मैं मयूरासन पर बैठा तो तू फर्श पर बैठ गया। अगर मैं फर्श पर बैठ जाऊँ तो तू कहाँ बैठेगा?'

चौधरी ने कहा, 'हुकम, आप फर्श पर विराजेंगे तो मैं चबूतरे के नीचे जमीन पर बैठूँगा। मुझे आपसे नीचे ही बैठना पड़ेगा।'

'तू नीचे ही बैठेगा इसके क्या माने? मैं फर्श पर बैठूँ तो तू कहाँ बैठेगा?'

चौधरी ने कहा, 'जमीन पर बैठें आपके दुश्मन। जमीन पर बैठने के लिए हमीं बहुत हैं। पिछले नम में आपने अच्छे करम किए इसलिए आप के नीचे तो हमेशा आसन रहेगा।'

ठाकुर ने कहा, 'नहीं रे पगले, मान ले कभी ऐसा मौका आ जाए। तू टाल-मटोल मत कर, साफ-साफ बता! अगर मैं जमीन पर बैठा तो तू कहाँ बैठेगा?'

चौधरी मुस्कराकर बोला, 'हुकम, अगर आप जमीन पर बैठे तो मैं थोड़ा गड्ढा खोदकर नीचे बैठ जाऊँगा।'

ठाकुर ने पूछा, 'अगर मैं गड्ढे में बैठ गया तो तो तू कहाँ बैठेगा?'

चौधरी चक्कर में पड़ गया, सोचकर जबाव दिया, 'अगर आप गड्ढे में बैठे तो मैं थोड़ी मिट्टी हटा और नीचे बैठ जाऊँगा।'

'पर चौधरी, अगर मैं वहाँ बैठ गया तो तू कहाँ बैठेगा?'

चौधरी बोला, 'मैं उससे भी गहरे गड्ढे में बैठ जाऊँगा। आपका आसन तो हमेशा ऊँचा ही रहेगा सरकार!'

पर ठाकुर को तसल्ली नहीं हुई। कहा, 'पर चौधरी, मैं उस गहरे गड्ढे में बैठ गया तो तू कहाँ बैठेगा?'

इन बेहूदे सवालों से चौधरी तंग आ गया। ढीठता से बोला, 'मैं बार-बार कह रहा हूँ कि आप ऊपर ही विराजें, पर आप गहरे गड्ढे में ही बैठना चाहें तो आपकी मर्जी! मैं उसमें रेत डालकर ऊपर बड़ी शिला रख दूँगा।'

मैं री मैं - विजय दान देथा

एक मालदार जाट मर गया तो उसकी घरवाली कई दिन तक रोती रही। जात-बिरादरी वालों ने समझाया तो वह रोते-रोते ही कहने लगी, 'पति के पीछे मरने से तो रही! यह दुःख तो मरूँगी तब तक मिटेगा नहीं। रोना तो इस बात का है कि घर में कोई मरद नहीं। मेरी छः सौ बीघा जमीन कौन जोतेगा, कौन बोएगा?'

हाथ में लाठी लिए और कंधे पर खेस रखे एक जाट पास ही खड़ा था वह जोर से बोला, 'मैं री मैं'

जाटनी फिर रोते-रोते बोली, 'मेरी तीन सौ गायों और पाँच सौ भेड़ों की देखभाल कौन करेगा?

उसी जाट ने फिर कहा, 'मैं री मैं'

जाटनी फिर रोते रोते बोली, 'मेरे चारे के चार पचावे और तीन ढूँगरियाँ हैं और पाँच बाड़े हैं उसकी देखभाल कौन करेगा?'

उस जाट ने किसी दूसरे को बोलने ही नहीं दिया तुरंत बोला, 'मैं री मैं'

जाटनी का रोना तब भी बंद नहीं हुआ। सुबकते हुए कहने लगी, 'मेरा पति बीस हजार का कर्जा छोड़ गया है, उसे कौन चुकाएगा?'

अबके वह जाट कुछ नहीं बोला पर जब किसी को बोलते नहीं देखा तो जोश से कहने लगा, 'भले आदमियों, इतनी बातों की मैंने अकेले जिम्मेदारी ली, तुम इतने जन खड़े हो, कोई तो इसका जिम्मा लो! यों मुँह क्या चुराते हो!'

बनिए का चाकर - विजय दान देथा

कोल्हू का बैल और बनिए का चाकर हर वक्त फिरते हुए ही शोभा देते हैं।

किसी एक सुहानी वर्षा की बात है कि बादलों की मधुर-मधुर गरज के साथ झमाझम पानी बरस रहा था। चौक वाली बरसाली में सेठ जी के पास ही उनका नौकर मौजूद था। पानी बिना रुके बह रहा है और यह ठूँठ की तरह खड़ा है, कैसे बर्दाश्त होता!

चौक में पत्थर की पनसेरी पड़ी थी। सेठ जी इसी चिंता में खोए थे कि नौकर को क्या काम बताया जाए। यह तो मालिक की तरह ही आराम कर रहा है!

पनसेरी पर नजर पड़ते ही तत्काल उपाय सूझा, चाकर की तरफ मुँह करके हुक्म सुनाया, "खड़ा-खड़ा देख क्या रहा है, यह पनसेरी अन्दर ले आ, बेचारी पानी में भीग रही है।"

मेहनत का सार - विजय दान देथा

एक बार भोले शंकर ने दुनिया पर बड़ा भारी कोप किया। पार्वती को साक्षी बनाकर संकल्प किया कि जब तक यह दुष्ट दुनिया सुधरेगी नहीं, तब तक शंख नहीं बजाएँगे। शंकर भगवान शंख बजाएँ तो बरसात हो।

अकाल-दर-अकाल पड़े। पानी की बूँद तक नहीं बरसी। न किसी राजा के क्लेश व सन्ताप की सीमा रही न किसी रंक की। दुनिया में त्राहिमाम-त्राहिमाम मच गया। लोगों ने मुँह में तिनका दबाकर खूब ही प्रायश्चित किया, पर महादेव अपने प्रण से तनिक भी नहीं डिगे।

संजोग की बात ऐसी बनी कि एक दफा शंकर-पार्वती गगन में उड़ते जा रहे थे। उन्होंने एक अजीब ही दृश्य देखा कि एक किसान भरी दोपहरी जलती धूप में खेत की जुताई कर रहा है। पसीने में सराबोर, मगर आपनी धुन में मगन। जमीन पत्थर की तरह सख्त हो गई थी। फिर भी वह जी जोड़ मेहनत कर रहा था, जैसे कल-परसों ही बारिश हुई हो। उसकी आँखों और उसके पसीने की बूँदों से ऐसी ही आशा चू रही थी। भोले शंकर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि पानी बरसे तो बरस बीते, तब यह मूर्ख क्या पागलपन कर रहा है!

शंकर-पार्वती विमान से नीचे उतरे। उससे पूछा, "अरे बावले! क्यूँ बेकार कष्ट उठा रहा है? सूखी धरती में केवल पसीने बहाने से ही खेती नहीं होती, बरसात का तो अब सपना भी दूभर है।"

किसान ने एक बार आँख उठा कर उनकी और देखा, और फिर हल चलाते-चलाते ही जवाब दिया, "हाँ, बिलकुल ठीक कह रहे हैं आप। मगर हल चलने का हुनर भूल न जाऊँ, इसलिए मैं हर साल इसी तरह पूरी लगन के साथ जुताई करता हूँ। जुताई करना भूल गया तो केवल वर्षा से ही गरज सरेगी! मेरी मेहनत का अपना आनंद भी तो है, फकत लोभ की खातिर मैं खेती नहीं करता।"

किसान के ये बोल कलेजे को पार करते हुए शंकर भगवान के मन में ठेठ गहरे बिंध गए, सोचने लगे, "मुझे भी शंख बजाए बरस बीत गए, कहीं शंख बजाना भूल तो नहीं गया! बस, उससे आगे सोचने की जरूरत ही उन्हें नहीं थी। खेत में खड़े-खड़े ही झोली से शंख निकला और जोर से फूँका। चारों ओर घटाएँ उमड़ पडीं - मतवाले हाथियों के सामान आकाश में गड़गड़ाहट पर गड़गड़ाहट गूँजने लगी और बेशुमार पानी बरसा - बेशुमार, जिसके स्वागत में किसान के पसीने की बूँदें पहले ही खेत में मौजूद थीं।

विचित्र अधिकार - विजय दान देथा

एक महात्मा फेरी पर जा रहे थे। एक नवेली बहू ने न तो उन्हें दक्षिणा में आटा डाला और न उन्हें रोटियाँ ही दीं। महात्मा को काफी गुस्सा आया। उनकी ऐसी शान तो पहली बार ही बिगड़ी। रास्ते भर उसे कोसते हुए, बुरा-भला कहते हुए बड़बड़ाते जा रहे थे कि सर पर लकड़ियों की भारी उठाए बहू की सास मिल गई।

उसे रोककर कहने लगे, कैसी कुलच्छनी बहू लाई हो जो हाथ की बजाए संतों को मुँह से उत्तर दे। क्या एक अंजलि भर आटे व एक रोटी से भी साधु सस्ता हो गया? महात्मा के भेख में एक कुत्ते जितनी भी इज्जत नहीं रखी। मुँह के सामने ही साफ मना कर दिया कि मुफ्तखोर साधुओं को देने के लिए आटा नहीं पीसा। अब तो घर-घर बहुओं का राज होने लगा है। थोड़े दिन बाद तो खुद भगवान भी भूखे मरने लगेंगे।

महात्मा की बात सुनकर सास आगबबूला हो गई। अविश्वास के भाव से पूछा, सच कह रहे हैं?

नहीं तो क्या झूठ बोल रहा हूँ। लगता है अब इन बहुओं के कारण हमें भी झूठ सीखना पड़ेगा।

फिर तो यह दुनिया जीने के काबिल नहीं रहेगी। नहीं महाराज, आप अपने मुँह से ऐसी बात न करें, सुनने से ही पाप लगता है। चलिए मेर साथ। बड़ी आई नवाबजादी, जीभ न खींच लूँ तो मेरे नाम पर जूती। खड़े-खड़े देख क्या रहे हैं, चलिए न मेरे साथ।

महात्मा ने सास का यह रंग-ढंग देखा तो बड़े प्रसन्न हुए। बार-बार मना करने पर उसके सर की भारी अपने कंधे पर धरने के बाद ही वे उसके पीछे-पीछे चले। सास गुस्से में तेज चलती हुई बहू को दनादन गालियाँ निकाल रही थी। सुनकर महात्मा को भी अचरज हुआ कि इत्ती गालियाँ तो वे भी नहीं जानते। पर मन-ही-मन बड़े खुश थे कि सास-बहू के झगड़े में उनके पौ-बारह हो जाने हैं। लकड़ियों का भारी बोझ उन्हें फूलों की डलिया जैसा हल्का लगा और उधर भार उतरने से सास का मुँह और ज्यादा खुल गया था।

घर पहुँचते ही महात्मा जी से भारी लेकर वह दनदनाती अंदर पहुँची। गले की पूरी ताकत से बहू को झिड़कते हुए उसने अंत में पूछा, बोल तूने, सचमुच महात्मा जी को मना किया?

बहू ने धीमे से अपराधी के नाईं हामी भरी। सास की आँच और तेज हो गई, बेशऊर कहीं की! तेरी इतनी हिम्मत कि मेरे रहते तू मना करे?

महात्मा मन ही मन सोचने लगे कि आज तो यह झोली छोटी पड़ जाएगी। बड़ी लाते तो अच्छा रहता। उन्हें क्या पता कि सास इतनी भली है! उबलती हाँडी के ढक्कन के तरह फदफदाते सास बाहर आई। पर खाली हाथ। गुस्से के उसी लहजे में बोली, भला आप ही बताइए, मेरे रहते वह मना करनेवाली कौन होती है? मरने के बाद भी उसकी ऐसी हिम्मत क्या हो जाए! मना करूँगी तो मैं करूँगी। यूँ मुँह बाए क्यूँ खड़े हैं? हाथ-पाँव हिलाते मौत आती है! खबरदार कभी इधर मुँह किया तो। इस घर की मालकिन हूँ तो मैं हूँ, एक बार नहीं सौ बार मना करूँगी। फौरन, अपना काला मुँह करिए यहाँ से। बेकार झिकझिक करने की मुझे फुरसत नहीं है।

बेचारे महात्मा ने डरते-सहमते अपने सर पर हाथ फेरा। सचमुच, लकड़ियों का गट्ठर तो सास उतार ले गई थी, फिर यह असहय बोझ काहे का है? उनके पाँव मानो धरती से चिपक गए हों।

सच्चाई का भ्रम - विजय दान देथा

किस्मत की मारी एक बामनी ने जटिये से घरवास किया।

कुंड में भीगे हुए कच्चे चमड़े की दुर्गंध से नाकों दम होने लगा, जी मितलाता, उबकाई आने लगती, सर चकराता। न पूरी भूख लगे और न रात को अच्छी तरह नींद आये। आँखें हरदम जलती रहती। हर वक्त नाक में इत्र के फोहे रखती और मुँह पर कपड़ा।

दिन बीतने में बरस नहीं लगते।

एक दिन बामनी ने गुमान के स्वर में जटिये से कहा, देखी मेरी करामत!

मेरे आने से तेरे घर की बदबू ही मिट गई, ऊँची जात का तो चमत्कार ही ऐसा होता है!

पति ने तनिक व्यंग्य से भरे परिहास में कहा, बदबू तो वैसी ही है, पर तू उसकी आदी हो गई है। तेरे नाक की कोंपल इती जल्दी मर जायेगी, मुझे ऐसी आशा नहीं थी।

अब तो इत्र-फुलेल का खरच कम कर दे।

तुम मुझे अकल देने चले हो? वह तो कभी का कम कर दिया, अपने घर का भला मैं नहीं सोचूँगी तो और कौन सोचेगा?

साधू की कमाई - विजय दान देथा

एक जाट बैलगाड़ी से कहीं जा रहा था। रास्ते में उसे एक साधु मिला। चौधरी भला था गाड़ी रोकते हुए कहा, 'महाराज, जय राम जी की! गाड़ी के रहते आप पैदल क्यों जा रहे हैं! रास्ता आराम से कटे उतना ही अच्छा। आइए, गाड़ी पर बैठ जाइए! आपकी संगत से मुझे भी थोड़ा धरम-लाभ हो जाएगा।'

महाराज के पास एक वीणा थी। पहले उसे गाड़ी पर रखा और फिर खुद भी बैठ गया।

चौमासे के कारन रास्ता बहुत उबड़खाबड़ था। हिचकोलों से गाड़ी का चूल-चूल हिल गया। चौधरी ने बैलों को पुचकारकर रास खींची।

नीचे उतरकर देखा - पहिए की पुट्टियाँ खिसककर बाहर निकल आई थीं। ठोंकने के लिए और कुछ नहीं दिखा तो उसने महाराज की वीणा उठा ली। एक तरफ बड़ा-सा तूंबा देख कर उसे लगा यह ठोंकने के लिए अच्छा औजार है। उसने पूरे जोर से पुट्टी पर वीणा का प्रहार किया। तूंबा भीतर से थोथा था। पुट्टी और पाचरे पर पड़ते ही उसके परखच्चे उड़ गए।

चौधरी ने महाराज को उलाहना दिया, 'वाह महाराज, सारी उम्र भटककर एक ही औजार सहेजा और वह भी थोथा! आपकी इस भगति में मुझे कुछ सार दिखा नहीं।'